[Conference-Composition of Colours :December,2014] ISSN- 2350-0530
DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v2.i3SE.2014.3575

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

वस्त्र अलंकरण में रंगों की पुरातन भूमिका

मुकुन्द कुमार
शोध छात्र,
दृश्य कला संकाय, टेक्सटाइल डिजाइन, चित्रकला विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

रंग वस्त्र आकल्पन (अलंकरण) का मूलाधार है। वस्त्र के अनुरूप रंग द्रव्यों (dyes) का चयन और उनके प्रयोग की तकनीक, कलाकार अथवा रंगरेज के निजी दृष्टिकोण एवं उनके अनुभव पर आधारित होती है। रंगों का, व्यक्ति की मनोभावनाओं पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इन्हीं पहलुओं का अध्ययन करके वस्त्रों के विविध प्रकार के अनुसार रंगद्रव्य का सफलतापूर्वक प्रयोग किया जाता है।

वस्त्र रंगाई की कला अतिप्राचीन है। भारतवर्ष में कई ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनमें वस्त्र बुनाई एवं वस्त्र–रंगाई के विषय में ईसा पूर्व एवं उत्तरार्ध में मनुष्यों को ज्ञान था।

वस्त्र बुनाई और रंगाई के इतिहास का प्रमाण भिन्न नहीं है। सन् 1920–22 ई0 में जब हड़प्पा, मोहनजोदड़ो के उत्खनन से सिन्धु संस्कृति का पता लगा तब उस सभ्यता के लोग रंगीन सूती व ऊनी वस्त्र उपयोग में लाते थे, इसका भी ज्ञान हुआ। इस सभ्यता की खोज का श्रेय डॉ0 आर0 डी0 बनर्जी एवं रायबहादुर दयाराम साहनी को है। सिन्धु संस्कृति ताम्र पाषाण–कालीन सभ्यता कहलाती है। इसका काल अधिकांश विद्वानों द्वारा लगभग 3250–2750 ईसा पूर्व माना गया है। इस सभ्यता का प्रमाण हड़प्पा, मोहनजोदड़ो के उत्खनन से मिलता है। यहाँ पर पाये गये रंगीन सूती व ऊनी वस्त्र और रंगाई के लिए प्रयोग में लाये जाने वाले ''वैट'' (Vat) जैसे बड़े हौदे, टेकुये (Spindles) तथा टेकुओं की मेखलाएँ यह प्रमाणित करती हैं कि इस सभ्यता के लोग कताई, बुनाई एवं रंगाई कला से परिचित थे। वेदकालीन साहित्य से सिन्धु सभ्यता के सामाजिक जीवन का अभ्यास करते समय यह ज्ञात होता है कि हस्त कर्म पर आधारित कार्य करने वाले लोगों को बढ़ई, कुम्हार तथा रंगरेज कहा जाता था। उत्खनन में प्राप्त शिल्पों से भी यह अनुमान होता है कि वे लोग विभिन्न ऋतुओं के अलग–अलग वस्त्र धारण करत थे जो संभवतः रंग–बिरंगे थे। वैदिक काल के ऋग्वेद में (5/52/19) मरूद्गण *'परूष्णी'* के बने शुद्ध रंगे हुए ऊनी वस्त्र पहने हुए वर्णित किये गए हैं। केसरिया रंग में रंगा हुआ रेशमी परिधान ''कौसुम्भ'' परिधान कहलाया और यह नितान्त पवित्र माना जाता था। (शाखा आर0 11/4) बाली युवतियाँ सुनहरे तार की बनी जरी के कामवाली रंगीन साड़ियाँ पहना करती थीं। (ऋग्वेद 1/92/4, 10/16) परूष्णी नदी के तीर पर बहुत बढ़िया रंगीन ऊनी वस्त्र तैयार होते थे। ऋग्वेद कालीन आर्य सभ्यता की वेशभूषा के बारे में जो जानकारी मिलती है उनके अनुसार ''जुलाहे कपड़ा बुनते थे'', रंगरेज तरह–तरह के कपड़ों को सुंदर रंगों में रंगकर आकर्षक बनाते थे। आर्यों द्वारा पहने वस्त्रों में नीविवास अधिवास वस्त्र रंग–बिरंगे ऊनी व सूती होते थे। अतः ऋग्वेद कालीन रंगाई कला के विषय में अन्य कोई विस्तृत जानकारी नहीं मिलती।

उत्तर पाषाण–युगीन काल, वेदोत्तर कालीन रामायण, महाभारत तथा अन्य पुराणों का काल माना जाता है। वेदोत्तर कालीन साहित्य में वर्णित सभ्यता–अष्टाध्यायी में कई प्रकार के शिल्पों का (कलात्मक वस्तुएँ और वस्त्र आदि) वर्णन आता है। ''गोणी (अनाज भरने का थैला), आवाय (करघा) और प्रवाणि (ठरकी या कंघी) (5/4/160) इन शब्दों से बुनाई का परिचय मिलता है। करघे से तुरन्त उतरे हुए थान का भी उल्लेख है। (तंत्रादचिराप हृते 5/2/70) पतंजलि के अनुसार आवाय वह स्थान था जहाँ बुनकर कपड़ा बुनते थे। ऊनी वस्त्र (उर्णा 4/3/158) का भी उल्लेख आता है। रंगाई के लिए नील (4/1/42) लाख, गोरोचना (पीले रंग का एक तरह का सुगंधि द्रव्य, गाय के मस्तक स्थित शुष्कपित्त) और कर्दभ (मटियाले रंग के लिए कीचड़ का प्रयोग) और मिट्टी के ठीकरों से बनने वाले रंगों का उल्लेख है। (4/2/2) उत्तर वैदिक काल में ऋग्वेद कालीन वस्त्रों के अलावा चीवर, चीर, चेल और आच्छादन का भी प्रयोग होने लगा। रेशमी और केशर से रंगे हुए वस्त्रों का भी प्रयोग होने लगा। वेदोत्तर कालीन साहित्य में वर्णित सभ्यता में रंगरेज, धोबी (4/2/6) जो रीठे से ऊनी कम्बल, क्षार से रेशमी और ऊनी वस्त्र और सषर्ण (सरसों) से छाल्टीन (सन) के वस्त्र (8/396) होते थे। महाकाव्यों का काल यानी रामायण, महाभारत के काल में मुख्य उद्योगों में अन्य उद्योगों के साथ जुलाहे, रंगसाज का उल्लेख भी है। इस काल में वस्त्रों का व्यवसाय अत्यन्त उन्नत दशा में था, उच्चकोटि के सूती, ऊनी तथा रेशमी वस्त्रों का उत्पादन होता था। धनी वर्ग रेशमी रंगीन वस्त्रों का प्रयोग करते थे।

650–325 ईसा पूर्व का काल जैन काल माना जाता है 'उत्तराध्ययन' नामक जैनग्रंथ से यह ज्ञात होता है कि 'नगरों में कुछ विशेष सड़कों या मुहल्लों में पेशेवर लोगों की बस्तियाँ बन जाती थी। काशी (बनारस) में रंगरेजों की गली (रजक वीथी, जातक, 4/81) और बुनकरों का मुहल्ला (ठान) था। (जातक, 1/356) बुद्ध–कालीन भारत में उद्योग–धंधों में रंगरेज का भी उल्लेख है

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

तथा व्यापार में देश–विदेश में रेशमी व मलमल के रंगीन वस्त्र के क्रय–विक्रय के बारे में उल्लेख है।मौर्यकालीन सभ्यता में उस समय के वस्त्र व्यवसाय की तो संसार का कोई भी देश समता नहीं कर सकता था। ''मैगास्थनीज'' के विवरण के अनुसार उस समय सूती, रेशमी और ऊनी तीनों प्रकार के अति आकर्षक नक्काशीदार वस्त्र इतनी अधिकता से संख्या में निर्मित किये जाते थे, कि आवश्यकता पूर्ति के पश्चात् विदेशों को भारी संख्या में निर्यात किये जाते थे।

शुंग काल (187 ईसा पूर्व से 75 ई0 सदी) में कालीदास के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि वस्त्र उद्योग तब अपनी उन्नतावस्था में था। कताई–बुनाई व अन्य कलाओं का पर्याप्त ज्ञान था तथा ऋतुओं के अनुसार भिन्न–भिन्न वस्त्र धारण किए जाते थे।गुप्तकालीन सभ्यता में उद्योग–धंधों की स्थिति संतोषजनक थी। देश के विभिन्न भागों में सूत की कताई एवं कपड़े की बुनाई के काम होते थे। देश के अधिकतर स्त्री–पुरुषों की जीविका इसी के द्वारा चलती थी। कपड़ा सम्पूर्ण देश में तैयार होता था, परन्तु गुजरात, बंगाल और तमिल राज्य प्रसिद्ध थे। वस्त्र निर्माण के साथ वस्त्र रंगने का व्यवसाय भी काफी उन्नति पर था। गुप्तकालीन स्त्री–पुरुषों को रंगीन वस्त्र पहनने का अधिक शौक था जिससे इन उद्योग–धन्धों की उन्नति होना स्वाभाविक था। ''वराहमिहिर'' इस युग के प्रसिद्ध ज्योतिष शास्त्री, रासायनशास्त्री एवं धातु–विज्ञान शास्त्री थे। इन्हें वनस्पति और जीवन विज्ञान का भी ज्ञान था। इनका ''बृहज्जातक ग्रंथ'' विज्ञान और कला का ग्रंथ था। वराहमिहिर ने वज्रलेप का उल्लेख किया है जिससे पता चलता है कि गुप्तकाल के वस्त्रों को रंगने की रासायनिक क्रिया से भी लोग परिचित थे। वनस्पतियों द्वारा इस समय के कारीगर विभिन्न प्रकार के रंग प्राप्त करते थे जिनका प्रयोग वे वस्त्र रंगने में करते थे।भारतीय इतिहास में ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं कि भारतीय रंगरेजों को वस्त्र–रंगाई की कला का भली–भाँति ज्ञान था तथा ये कला अति विकसित थी। 17 से 19वीं सदी तक भारतीय इतिहास में कई ऐसे प्रमाण मिलते हैं, जिनमें राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, दक्षिण भारत आदि क्षेत्रों में रंगाई व छपाई किये गए प्रसिद्ध वस्त्र पश्चिमी देशों में निर्यात होते थे। राजस्थान व गुजरात के प्राकृतिक रंगों से बनाए गए ब्लाक प्रिंटिंग के वस्त्र व श्रीकलाहस्ती, मसुलीपट्टनम के कलमकारी व पालमपोर वस्त्र अपनी कला के लिए प्रसिद्ध थे। कारपेट रंगाई के लिए प्राकृतिक रंगों के प्रयोग में मैंडर के जड़ों से लाल, कोचिनिअल से गहरा लाल, अंगुर की पत्तियों से या अनार के छिलकों से या केशर से पीला रंग और इंडिगो पौधों से बैंगनी रंग प्राप्त किया जाता था। पीले व नीले रंग के मिश्रण से हरे रंग का निर्माण होता था। प्राकृतिक ऊन के रंग सलेटी व हल्के पीले तथा भूरे होते ही थे। इसके अलावा यही रंग छिलके और छाले प्राप्त किये जाते थे। ओंक वृक्ष के फलों से काला रंग प्राप्त किया जाता था।

रंगों का संयोजन रंगे हुए वस्त्रों के सौन्दर्य को बढ़ाते हैं तथा सुंदर रंगे हुए वस्त्र सभी को अच्छे लगते हैं। अतः रंगों का प्रयोग प्रत्येक वस्तु में तथा सभी स्थानों पर किया जाता है तथा हर वस्तु रंगों से अलंकृत की जाती है। प्रागैतिहासिक से लेकर वर्तमान समय में भी मनुष्य सदैव रंगों से आकृष्ट होता आया है। अपने वेश–भूषा के लिए रंगे हुए वस्त्र तथा घर सजाने हेतु सुंदर आकृतियों का संयोजनात्मक प्रयोग उसने सदैव से ही किया है। किसी भी वस्तु या स्थान में सर्वत्र एक ही रंग का प्रयोग किया जाए तो संपूर्ण वातावरण उदासीन हो जाता है तथा सर्वत्र नीरसता छा जाती है। अतः रंगों का सम्मिश्रण आवश्यक है, रंग समन्वय या रंगों का संयोजन एक कला है।

आंध्र प्रदेश की कलमकारी वस्त्र अलंकरण

संदर्भ :

1. *भगत, (डॉ0) आशा– ''राजस्थान, गुजरात एवं मध्यप्रदेश की छपाई कला का सर्वेक्षण'', नई दिल्ली, राधा पब्लिकेशन, 1995*
2. *वर्मा, (डॉ0) प्रमिला– ''वस्त्र विज्ञान एवं परिधान'', पटना, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, इक्कीसवाँ संस्करण, 2009*
3. *कुमार, (डॉ0) कृष्ण– ''प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास'', नई दिल्ली, श्री सरस्वती सदन, 1993*
4. *गैरोला, वाचस्पति– ''भारतीय संस्कृति और कला'', लखनऊ, उत्तर प्रदेश, हिन्दी संस्थान, 1985*
5. *उपाध्याय, आचार्य बलदेव– ''वैदिक साहित्य और संस्कृति'', वाराणसी, शारदा संस्थान, पंचम संस्करण, 1980*
6. *मुकर्जी, राधा–कुमुद– ''हिन्दू सभ्यता'', नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, प्रा0लि0, 1983*
   शोनॉय, वी0ए0– ''हिस्ट्री ऑफ टेक्स्टाइल डिजाइन'', मुम्बई, सेवक पब्लिकेशन, फोर्थ एडिशन, सैकण्ड इम्प्रेशन, 1995